NOVATEUR PUBLICATIONS
JournalNX- A Multidisciplinary Peer Reviewed Journal
ISSN No: 2581 - 4230
VOLUME 7, ISSUE 10, Oct. -2021

Dr. Lajvanti

Associate Professor of Hindi

Govt. College Kosli, Haryana

ग़ज़ल की परिभाषा, उद्भव एवं अंगः एक अध्ययन

Abstract

ग़ज़ल अरबी भाषा का शब्द है। इसका शाब्दिक अर्थ है औरतों से अथवा प्रेमिका से वार्तालाप। फ़ारसी में भी ग़ज़ल को "वाजनान गुफ़्तगू करदन" से परिभाषित किया गया है। अंग्रेजी में भी यह कहा गया है– The Conversation with Women । निशात ओड्स के अनुसार– 'The word Gazal comes from Mugzhalat to make love'। सार यही है कि ग़ज़ल शब्द का अर्थ है औरत से प्यार भरी बातचीत। ग़ज़ल काफ़िया–रदीफ़ के बंधन में रहकर, एक लयखंड में रचे गए विभिन्न शे'रों की माला होती है, जिसका पहला मनका 'मतला' और अन्तिम मनका 'मक़ता' होता है। ग़ज़ल एक ऐसी छन्दोबद्ध काव्यविधा है जिसमें कवि को हर शेर में विभिन्न कथ्य प्रतिपादित करने की छूट है तथापि सम्पूर्ण काव्य–रचना में एक विशिष्ट छंदविधान का अनुशासन पालित है एवं एक सांस्कृतिक भावमयी, सम्प्रेषणयुक्त रससिक्त भावव्यंजना अनुस्थूत है। ग़ज़ल शे'रो में पढ़ी जाती है। शे'रो के मज़बूत कमर उनके क़ाफ़िए हैं, जिन पर उनके बलखाते रदीफ़ या तुकांत होते हैं। हृदय की रागात्मक किन्तु बहरयुक्त लय ही ग़ज़ल है, ग़ज़ल की पहचान है।

ग़ज़ल का जन्म अरबी भाषा में हुआ। सामंती युग में वहाँ बादशाह की तारीफ़ में कसीदे (प्रशंसात्मक काव्य) लिखे जाते थे। उनमें से काव्य का एक टुकड़ा 'तश्बीब' के नाम से जाना जाता था। इस टुकड़े में कवि को अपने मन की बात कहने की स्वतंत्रता रहती थी। ये कसीदे से पूर्व की पंक्तियाँ होती थी तथा इनमें सौंदर्य, प्रेम और वियोग आदि की भावनाएँ होती थीं। यही तश्बीब कसीदे से अलग होकर एक स्वतंत्र विधा के

रूप में ग़ज़ल के रूप में सामने आई।

ग़ज़ल के उद्भव के संबंध में और भी कई अनुमान लगाए गए हैं। कुछ लोग ग़ज़ल का उद्भव ग़ज़ाला शब्द से भी मानते हैं। ग़ज़ाला हिरण के बच्चे को कहा जाता है। जब किसी शिकारी का तीर हिरण के बच्चे को लगता है तो उसके मुख से जो चीख निकलती है उसी को ग़ज़ल कहते हैं। इससे सिद्ध होता है कि ग़ज़ल का जन्म वेदना में होता है।

कुछ लोग यह भी मानते हैं कि अरब में ग़ज़ल नाम का एक कवि हुआ। वह प्रेम और सौंदर्यपरक कविताएँ लिखता था तथा उसने अपनी सारी उम्र शराब पीने में गुज़ार दी। उसी के नाम पर ही इस तरह की कविताओं का नाम ग़ज़ल पड़ गया।

ग़ज़ल के उद्भव संबंधी उपर्युक्त अनुमानों में से जो भी सत्य हो परन्तु यह तो तय है कि ग़ज़ल का उद्भव अरब में हुआ। इसे पल्लवित और पुष्पित फारसी कवियों ने किया परन्तु इसे चरमोत्कर्ष पर उर्दू ने पहुँचाया। अब यह हिन्दी में नये आयामों को छू रही है।

ग़ज़ल के अंग

जब एक ग़ज़लकार ग़ज़ल की रचना करता है तो उसे ग़ज़ल के अंगों का ज्ञान होना भी अनिवार्य होता है। ग़ज़ल एक छन्दोबद्ध रचना होती है, इसलिए इसके छन्दशास्त्र का ज्ञान भी आवश्यक है। ग़ज़ल के मुख्य अंग निम्नलिखित हैं–

शे'र

शे'र का शाब्दिक अर्थ है जानना या पता लगाना। शेंर में दो पंक्तियाँ होती हैं। ये दोनों पंक्तियाँ एक ही बहर में होनी आवश्यक होती हैं। शेंर की प्रथम पंक्ति को उर्दू में मिसरा–ऊला तथा द्वितीय पंक्ति को मिसरा–सानी कहते हैं। पहली पंक्ति में शायर अपनी बात की शुरूआत करता है तथा दूसरी पंक्ति में वह बात पूरी करनी होती है। इसी प्रकार शेंर की प्रत्येक पंक्ति भी वो भागों में होती है। प्रथम पंक्ति के प्रथमार्द्ध को

सदर (मुख्य) और उत्तरार्द्ध को उरूज़ (दिशा) कहा जाता है। दूसरी पंक्ति के प्रथम भाग को इब्तिदा (आरम्भिका) तथा द्वितीय भाग को ज़र्ब (अन्तिका) कहते हैं।

हिन्दी के दोहों की तरह ग़ज़ल का प्रत्येक शेर अपने–आप में पूर्ण होता है। उसे समझने के लिए किसी अन्य शेर या पूरी ग़ज़ल पढ़ने की आवश्यकता नहीं होती। यदि शेर पढ़ने या सुनने से पूरी बात समझ में नहीं आती तो उसे सम्पूर्ण शेंर नहीं कह सकते। ऐसे शेंर में अवश्य ही भाव के स्तर पर कोई न कोई कमी होगी। ग़ज़ल में हर शेंर स्वतंत्र विषय को लेकर चलता है। अतः हर शेंर का विषय अलग–अलग होता है, जैसे पहला शेंर देशभक्ति का, दूसरा व्यक्तिगत वेदना का तथा तीसरा सामाजिक विषय को लेकर भी हो सकता है।

ग़ज़ल में अलग–अलग विषयों के शेंर क़ाफ़िए और रदीफ़ और रदीफ़ के बंधन में बँधे होते हैं। एक ग़ज़ल के सभी शे'रों में एक समान लय और वज़न होना चाहिए। सभी शेंर एक ही बहर में होने चाहिए होते हैं। एक ग़ज़ल में पाँच, सात, नौ, ग्यारह शेंर हो सकते हैं। परन्तु, यह संख्या कोई निश्चित नहीं है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित शेंर देखे जा सकते हैं–

न ज़रूरत है दवा की, ना दवा की दोस्तों
दिल की गहराई से ज़्यादा दर्द के फ़ोड़े गए।[1]
इसी ग़ज़ल का अगला शेंर है–
इक अदद सूरज को अपने साथ लाने के लिए
लोग उस अंधेर–नगरी की तरफ़ दौड़ गए।

यहाँ पहला शेंर तो व्यक्तिगत वेदना को लेकर है परन्तु दूसरा शेंर समाज की उस व्यवस्था की तरफ़ संकेत करता है जिसमें सभी भटके हुए हैं। परन्तु, ये दोनों शेंर एक ही लयखण्ड में हैं इसलिए इन्हें एक ही ग़ज़ल में रखने में कोई आपत्ति नहीं है।

शेंर के अंग

---

[1] डॉ. नरेश, हिन्दी ग़ज़ल शिल्प और संरचना, पृ. 9

शेंर को पूरी तरह से समझने के लिए इसके अंगों को समझना भी आवश्यक है। शेंर में मुख्य रूप से क़ाफ़िया और रदीफ़ होते हैं। इनका विस्तृत वर्णन निम्नलिखित है–

क़ाफ़िया

"क़ाफ़िए का अर्थ है पीछे–पीछे चलना, बार–बार चलने वाला या फिर कदम से कदम मिलाकर चलने वाला।"

डॉ. रोहिताश्व अस्थाना के अनुसार, "क़ाफ़िया का तात्पर्य तुक से होता है। ग़ज़ल के शे'रों में रदीफ़ से पहले जो अन्तयानुप्रास–युक्त शब्द आते हैं और जिनका प्रयोग तुक मिलाने की दृष्टि से किया जाता है, क़ाफ़िया कहलाते हैं।"

इन परिभाषाओं से ज्ञात होता है कि क़ाफ़िया वह चपल अक्षर है जो बार–बार बदलता रहता है। क़ाफ़िया ही ग़ज़ल की लय को निर्धारित करता है। इसका अंतिम एक अक्षर स्थायी होता है तथा उससे पहले का अक्षर परिवर्तित होता रहता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित ग़ज़ल को देखें–

दिल की प्यास बुझाने आओ
पीने और पिलाने आओ।
आओ किसी बहाने आओ
बेशक मुझे सताने आओ।
नफ़रत के इन गलियारों में
उल्फत दिया जलाने आओ।
मानवता के पहरेदारो
जागो और जगाने आओ।
नेताओं के चमचे बनकर
लूटें खुले खजाने आओ।
फिर आएंगे इधर लुटेरे
लुटना है तो थाने आओ।
अंधो आगे रोना कैसा
बहरों को समझाने आओ।
इतनी नफ़रत ठीक नहीं है

'केवल' कभी मयखाने आओ।

इस ग़ज़ल में बुझाने, पिलाने, सताने, जलाने, जगाने, खजाने, थाने, समझाने और मयखाने आदि काफ़िए हैं। इनमें अंतिम अक्षर 'आने' बार–बार आया है परन्तु पहले वाले अक्षर ही बदले हैं। कई बार शायर केवल शब्द के अंत में आने वाली मात्रा की ही तुकबन्दी करते हैं। यह पद्वति उर्दू से आई है जैसे–

मान मर्यादा खुदी को बेचकर
गर्वमय हम हैं सभी को बेचकर
है नियति यह आदमी की आजकल
मौत मांगे जिंदगी को बेचकर
मौत के साये स्वयं बना रहा
क्यों मनुज ज़िन्दादिली को बेचकर

ग़ज़ल की इन पंक्तियों में खुदी, सभी, जिंदगी तथा ज़िन्दादिली काफ़िए हैं जिनमें अन्तिम मात्र 'ई' के अतिरिक्त कुछ भी समानता नहीं है, अतः इसी के कारण ही तुकबन्दी हुई है।

क़ाफ़िए के मामले में ग़ज़लकार को विशेष रूप से सजग रहने की आवश्यकता होती है क्योंकि ज़रा सी चूक पूरी ग़ज़ल के सौन्दर्य को उसी प्रकार बिगाड़ देती है जैसे सुंदर कपड़े में लगा कोई पैबंद।

क़ाफ़िए में स्थाई अक्षर के पहले का चपल अक्षर एक समान होना चाहिए, तभी वे क़ाफ़िए शुद्ध माने जाएँगे। जैसे– नगर, समर। इनमें अन्तिम अक्षर 'र' बार–बार आया है और इनसे पूर्व 'ग', 'म' में एक समान स्वर 'अ' मिला हुआ है। अतः ये क़ाफ़िए शुद्ध हैं। इस बात में बड़े–बड़े शायर भी त्रुटि कर देते हैं।

रदीफ़

रदीफ़ का शब्दकोषीय अर्थ है पीछे–पीछे चलना। डॉ. हरदेव बाहरी के अनुसार रदीफ़ का अर्थ है "घोड़े पर पीछे बैठने वाला व्यक्ति या पीछे की ओर रहने वाली सेना।"

ग़ज़ल में क़ाफ़िए के बाद जिन शब्दों की पुनरावृत्ति की जाती है, उन्हें रदीफ़ कहते है। डॉ. नरेश के अनुसार, "ग़ज़ल के हर शेर में क़ाफ़िए के बाद, निश्चित क्रमानुसार दोहराए जाने वाले अक्षर, शब्द या शब्दसमूह को रदीफ़ कहते हैं।

इस तरह से ग़ज़ल के शे'रों के अन्त में बार–बार आने वाले शब्द या शब्दों को रदीफ़ कहते हैं। एक उदाहरण द्वारा रदीफ़ को समझाया जा राह है–

नुकीले पत्थरों पर नाचते हैं हम, हमें देखो
बहुत छोटे लगेंगे तुमको अपने गम, हमें देखो
हमारे खून से जगमग हैं कितनी दीपमालाएँ
हमारे घर में फिर भी रौशनी है कम, हमें देखो
कई पुश्तों से ढोते आ रहे हैं बोझ दुनिया का
लबों पर आ चुका है अब हमारा दम, हमें देखो
ये हमने ठान ली थी हम किसी सूरत में न पिघलेंगे
हमारी आँख क्यों होने लगी है नम, हमें देखो
ठहर जाओ न इतराओ बग़ावत होने वाली है
उठाएंगे बगावत का हम ही परचम, हमें देखों

इस ग़ज़ल में 'हमें देखों' ग़ज़ल की पहली पंक्ति, उसके बाद दूसरी पंक्ति तथा फिर चौथी, छठी, आठवीं और दसवीं पंक्ति के अन्त में आया है। अतः यही रदीफ़ है। इस ग़ज़ल के क़ाफ़िए हम, ग़म, कम, दम, नम और परचम आदि हैं। रदीफ़ का स्थान क़ाफ़िए के एकदम बाद होता है और यह बार–बार आता है तथा ग़ज़ल की लय को मज़बूत करता है।

कई ग़ज़लें बिना रदीफ़ की भी होती हैं। ऐसी ग़ज़लों को उर्दू में ग़ैर मुरद्दफ़ ग़ज़लें कहते हैं। इन ग़ज़लों में क़ाफ़िया तो होता है परन्तु रदीफ़ नहीं होती। उदाहरण के लिए एक ग़ज़ल प्रस्तुत है–

याद नहीं कुछ कब तक आई थी पेड़ों पर हरियाली
पत्र–पुष्प–फल–हीन दिखी सर्वदा हमें हर डाली
पसर रहा है गहन अँधेरा हर घर, हर आँगन में

सोचा था उजियाला होगा, छूटी थी जब लाली
इतनी कटुता और विषमता पलती हृदय–हृदय में
अब समाज की हर नैतिकता लगती है इक गाली

इस ग़ज़ल में हरियाली, डाली, लाली और गाली आदि क़ाफ़िए तो हैं परन्तु रदीफ़ नहीं है। अतः कह सकते हैं कि ग़ज़ल के लिए क़ाफ़िया तो अनिवार्य तत्त्व है, परन्तु ग़ज़लें बिना रदीफ़ के भी लिखी जा सकती हैं। बिना रदीफ़ के ग़ज़ल लिखना एक कठिन कार्य है। अतः इसके लिए ग़ज़लकार को बहुत अभ्यास करना पड़ता है।

मतला

ग़ज़ल के पहले शेंर को मतला कहते हैं। मतला ही ग़ज़ल के स्वरूप को निर्धारित करता है। इसी से पता चल जाता है कि ग़ज़ल में क़ाफ़िए का क्या रूप है और रदीफ़ कौनसी है। मतले की पहली पंक्ति को 'मत्ल–ए–अव्वल' तथा दूसरीं पंक्ति को 'मत्ल–ए–सानी' कहते हैं।

महावीर प्रसाद मूकेश के अनुसार, "ग़ज़ल के संदर्भ में यह सुस्पष्ट निष्कर्ष है कि ग़ज़ल का मतला ग़ज़ल की ज़मीन के हिसाब से पूरी तरह दोषरहित तथा विशुद्ध होना अनिवार्य है। मतला पूरी ग़ज़ल का आईना है, जिसमें एक ही बार देखने से वज़्न, क़ाफ़िया और रदीफ़ साफ़ दिखाई दे जाएँ।"

उदाहरण के लिए कुछ मतलों को देखें–

दुखी गुल चमन को बताने लगे
कि काँटे भी खुशबू चुराने लगे।
जिंदगी की जंग में जांबाज़ होना आ गया
मौत को तकिए के नीचे रखके सोना आ गया।
संग रहते हुए भी संग न हो।
मित्र वह क्या जो अन्तरंग न हो।।

इस प्रकार से केवल मतले की ही दोनों पंक्तियों में काफ़िया और रदीफ़ होते हैं। बाकी शे'रों की दूसरी पंक्ति में ही क़ाफ़िया और रदीफ़ होते हैं, पहली पंक्ति में इनका

होना कोई जरूरी नहीं होता। जो क़ाफ़िया, रदीफ़ और बहर मतले में निश्चित हो जाते हैं, पूरी ग़ज़ल में उन्हीं को लेकर चलना पड़ता है नहीं तो ग़ज़ल कुरूप हो जाएगी।

मक़्ता

मक़्ता ग़ज़ल का अंतिम शेंर होता है। इसमें ग़ज़लकार का तख़ल्लुस (उपनाम) आता है। ग़ज़ल में यह इस बात का प्रतीक है कि यहाँ रचना समाप्त होती है या यह ग़ज़ल का अंतिम शेंर है। उदाहरण के लिए–

'दोस्त' भूलो न अगर काँटा निकले कोई
सीख इंसान को दी है यही हैवानों ने।
भूल जा अपने अहद को तू 'अनाम'
अब तो बच्चों के ज़माने आ गए।

यहाँ पहले शेंर में 'दोस्त तथा दूसरे शेंर में 'अनाम' ग़ज़लकारों के उपनाम हैं तथा यही ग़ज़ल के अंतिम शेंर भी हैं। परन्तु, हिन्दी ग़ज़ल में मक़्ते में ग़ज़लकार का उपनाम आना आवश्यक नहीं माना जाता। हिन्दी में बहुत सी ग़ज़लें बिना उपनाम के ही लिखी जाती है। ऐसी ग़ज़लों के अंतिम शेंर को भी मक़्ता ही कहेंगे, भले ही उनमें उपनाम न भी हो।

मिसरा

शेंर की एक पंक्ति को मिसरा कहते हैं। शेर की पहली पंक्ति को मिसर–ए–अव्वल तथा दूसरी पंक्ति को मिसर–ए–सानी कहते हैं।

डदाहरण के लिए–

मिलना चाहा नहीं कभी तुमने
वरना मिलने के सौ बहाने हैं।

यहाँ पहली पंक्ति 'मिलना चाहा नहीं कभी तुमने' को मिसर–ए–अव्वल तथा 'वरना मिलने के सौ बहाने है को मिसर–ए–सानी कहेंगे। ग़ज़ल की किसी भी पंक्ति को मिसरा कह सकते हैं।

ज़मीन

एक ही छन्द में क़ाफ़िए और रदीफ़ के मेल को ज़मीन कहते हैं। जब एक शायर किसी दूसरे शायर के क़ाफ़िए और रदीफ़ का प्रयोग करते हुए ग़ज़ल कहे तो कहना पड़ेगा कि उसने उस शायर की ज़मीन पर ग़ज़ल कही है। वरही मुशायरे में तो कई शायर एक ही ज़मीन पर अपनी–अपनी ग़ज़लें कहते हैं। कोई शायर एक ही छनद तथा एक ही क़ाफ़िए–रदीफ़ में ग़ज़ल कह सकता है, परन्तु प्रत्येक ग़ज़ल अलग कहलाएगी।

सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची

(1) अम्बा प्रसाद सुमन, भाषाविज्ञान सिद्धांत और प्रयोग, सस्ता साहित्य भण्डार, दिल्ली, संस्करण–1982

(2) अयोध्या प्रसाद गोयलीय, शेर–ओ–शायरी, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1999

(3) अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध", बोलचाल, हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस, द्वितीय संस्करण–संवत् 2011

(4) डॉ. अशोक के.शाह 'प्रतीक', हिन्दी भाषा और भाषाविज्ञान, अमर प्रकाशन, मथुरा, प्रथम संस्करण–2008

(5) उदयनारायण तिवारी, हिन्दी भाषा का उद्‌गम और विकास, भारतीय भण्डार, संस्करण–संवत् 2012

(6) उमेशचन्द्र शुक्ल, हिन्दी व्याकरण, वाणी, प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–2000

(7) कपिल देव द्विवेदी, भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण–1991

(8) कमलकांत मिश्र, अर्थविज्ञान, नाग प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–1988